
इकाई 20 अपने-अपने पिंजरे-2

bdkbz dh : i js[kk

- 20.0 उद्देश्य
- 20.1 प्रस्तावना
- 20.2 अपने-अपने पिंजरे की वैचारिक पृ-ठभूमि
 - 20.2.1 यातना और अनुभव से उपजा चिंतन
 - 20.2.2 असहमति और विद्रोह का समाज दर्शन
 - 20.2.3 यथार्थ का बेबाक विश्लेषण
 - 20.2.4 दृ-टि की व्यापकता का वितान
- 20.3 उत्पीड़न की विरासत बरास्ते 'अपने-अपने पिंजरे'
 - 20.3.1 वर्णव्यवस्था और पितृसत्तात्मकता
 - 20.3.2 व्यक्ति अस्मिता बनाम जाति व्यवस्था
 - 20.3.3 वर्णवादी समाज और बहिष्कृत बस्तियाँ
- 20.4 पूँजीवाद दु-चक्र में जातिवादी संरचना का इस्तेमाल
- 20.5 वर्णवादी पदानुक्रम, श्रे-ठताबोध और दलित समाज
- 20.6 अपने-अपने पिंजरे : संरचनागत वैशि-ट्य
- 20.7 सारांश
- 20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 20.9 प्रश्न/अभ्यास

20.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप 'अपने-अपने पिंजरे' आत्मकथन के कुछ और पहलुओं का अध्ययन करेंगे। अभिव्यक्ति के पारंपरिक रूपों और सरोकारों से असहमत दलित साहित्य ने पुनर्जन्म, प्रारब्ध और वर्ण व्यवस्था पर टिकी भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था को प्रश्नबद्ध किया। दलित हस्तक्षेप की इस उत्कृष्ट आकांक्षा और सत्यान्वे-नी दृ-टि को पारंपरिक कलावादी खेमे से अनेक चुनौतियाँ मिलीं। पर बहुजन के श्रम से अनुप्राणित इस सौन्दर्यदृ-टि ने साहित्य के पारंपरिक मानकों को ही बदल डाला। आज भारतीय साहित्य की कोई भी अवधारणा दलित सृजन परिदृश्य के बिना अधूरी ही है। भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति से रचे-पगे दलित साहित्य में न सिर्फ सदियों पुराने उत्पीड़न के समाजशास्त्र के प्रति विद्रोह का भाव है, बल्कि उस सौन्दर्यशास्त्र की प्रति-ठा की आकांक्षा भी है जिसमें समतामूलक समाज की अवधारणा निहित हो। शो-ण के खिलाफ संघ-रत दलित साहित्य जिस मुकम्मल भारतीय समाज की बात करता है, उसकी मूल चेतना है, पूर्ण समानता। रमणिका गुप्ता की एक लम्बी टिप्पणी को यहाँ उद्धृत करना मौजू होगा, "दलित साहित्य उस दबी हुई अस्मिता को प्राणवान मानव अस्मिता का हिस्सा बनाने की लड़ाई लड़ रहा होता है, जब वह वर्णविहीन, वर्गविहीन, जातिविहीन, समाज बनाकर एक मानवीय समाज बनाने की घो-णा करता है। जनवादी, प्रगतिशील और जनतांत्रिक साहित्य जो भारत के जन्मना जाति के संदर्भ में केवल वर्ग की ही बात करते-करते एकतरफा, कहें कि इकहरा हो गया था - दलित साहित्य ने सामाजिक समानता और राजनीतिक भागीदारी को भी

साहित्य का विनय बनाकर उसकी आर्थिक समानता की अधूरी मुहिम को पूर्णता दी। इन तीनों पर समानता प्राप्त किये बगैर मनु-य पूर्ण समानता प्राप्त नहीं कर सकता। दलित साहित्य इस पूर्ण समानता के लिए संघर्षरत है। दलित साहित्य में संघर्ष और अस्मिता की पहली अभिव्यक्ति आत्मकथनों के माध्यम से हुई। दलित आत्मकथनों में "अपने-अपने पिंजरे" के दोनों भाग कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। इकाई 19 में आप आत्मकथन के माध्यम से मोहनदास नैमिशराय के जीवन की उन घटनाओं से रू-ब-रू हुए जिनसे दलित संकल्प और चिंतन को व्यवस्थित आधार मिला। इस अध्याय में आप आत्मकथन की कुछ अन्य विशेषताओं यानी वैचारिकी का अध्ययन करेंगे। अध्याय के अध्ययन के बाद आप रू-ब-रू होंगे-

‘अपने-अपने पिंजरे’ आत्मकथन के संरचनागत वैशिष्ट्य से;

आत्मकथन की उस दार्शनिक पीठिका से जो जीवन व्यावहारिक अनुभवों से जुड़े विभिन्न प्रसंगों से पैदा होता है;

दलित उत्पीड़न की उस पृष्ठभूमि से जो ‘अपने-अपने पिंजरे’ के कथानक में अंतर्भूत है;

दलित अवसरवाद और दलित जातियों के बीच मौजूद अस्पृश्यता की वैचारिकी से; और

भारतीय जाति व्यवस्था के पूँजीवाद द्वारा इस्तेमाल के विभिन्न संदर्भों से।

आइए, इकाई का विस्तार से अध्ययन करें।

20.1 प्रस्तावना

दलित आत्म ने भारतीय सामाजिक संरचना में मौजूद दलितों के प्रति दया और कृपा के पारंपरिक प्रसंगों के स्थान पर न्यायपूर्ण व्यवस्था की माँग को धारदार अभिव्यक्ति द्वारा प्रकट किया। दलित लेखकों ने समता, स्वतंत्रता और न्याय की स्पष्ट माँग को दार्शनिक पृष्ठभूमि के रूप में चुना। सुपरिचित दलित, चिन्तक विमल थोरात की टिप्पणी ध्यान देने लायक है, "इन आत्मकथनों में समता, स्वतंत्रता और न्याय की स्पष्ट माँग है। इसमें मुक्ति आन्दोलन की ताप और ताकत है। ये वेदना के गर्भ से प्रसूत हैं और पुरानी सामाजिक संरचनाओं को अस्वीकार करती हैं। घुटन भरे सामाजिक परिवेश से निकले व्यक्ति की नयी दुनिया और समाज की तलाश, परिकल्पना और निर्माण की इच्छाशक्ति और उम्मीद की अभिव्यक्ति है। बेशक बहुत से लेखकों के अपने पूर्वग्रह भी इनमें मौजूद अभिव्यक्ति के जो स्वर निकल रहे हैं उन्हें सहानुभूति नहीं न्यायपूर्ण ध्यान की आवश्यकता है।" जाहिर सी बात है कि दलित आबादी की न्यायपूर्ण माँग को अब और उपेक्षित करना समाज के स्वस्थ विकास के लिए एक बड़ी बाधा है।

‘अपने-अपने पिंजरे’ आत्मकथन की कथावस्तु से परिचय के बाद आवश्यकता इस बात की है कि रचना के विन्यास में मौजूद संदेश, सैद्धान्तिक निष्कर्षों और कला चेतना का भी मूल्यांकन किया जाय। साथ ही रचना की पृष्ठभूमि और अभिव्यक्त समाज दर्शन की मीमांसा भी की जाय।

20.2 अपने-अपने पिंजरे की वैचारिक पृष्ठभूमि

‘अपने-अपने पिंजरे’ के लेखक मोहनदास नैमिशराय दलित जीवन की त्रासदी का बयान करते हुए भारतीय समाज की उस विशेषता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं, जहाँ

केवल आर्थिक उत्पीड़न मुद्दा नहीं है, बल्कि असली मुद्दा है भारतीय समाज की संरचनागत बनावट। स्वयं उन्हीं के शब्दों में, "दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद है। दलित की व्याप्ति अधिक है, तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक तक ही सीमित है। प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के अन्तर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते.. अर्थात् सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विनमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विनमता का शिकार होता है।"

'अपने-अपने पिंजरे' की अंतर्वस्तु के गठन में दलित जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यानी वर्णव्यवस्था प्रेरित सामाजिक विनमता की विभिन्न फलश्रुतियों का मार्मिक चित्रण किया गया है। यह लेखक के जीवन में मौजूद निर्मम यथार्थ का चित्रण है, लिहाजा यह कलावादी उच्छलन के स्थान पर विद्रोह और असहमति का सर्जनात्मक विस्फोट है। इस अर्थ में इसमें 'कला' का चित्रण नहीं हुआ है बल्कि जीवन की जिजीविषा के श्रोतों का संधान है। देशकाल निरपेक्ष रचना सन्दर्भ के स्थान पर कर्म सौन्दर्य से सम्पन्न 'अपने-अपने पिंजरे' के वैचारिक धरातलों का और भी विस्तृत अध्ययन अपेक्षित है। रचनाकार के जीवन की घटनायें हमें भारतीय जीवन की विभिन्न जातिगत एवं सांस्कृतिक दुरभिसंधियों से रू-ब-रू कराती हैं।

20.2.1 यातना और अनुभव से उपजा चिंतन

वर्णव्यवस्था और जाति व्यवस्था से प्रेरित-संचालित दलित उत्पीड़न के केंद्र बिन्दु के रूप में गाँव को चिन्हित करते हुए प्रायः यह कहा जाता है कि 'भारतीय गाँव दलित उत्पीड़न के यातना गृह हैं' लेकिन मोहनदास नैमिशराय का जीवन विकास हमें इस तथ्य से साक्षात्कार कराता है कि शहर भी इस उत्पीड़न के कदमताल मिला रहे हैं। 'अपने-अपने पिंजरे' में वर्णित दलित यथार्थ मेरठ शहर में केन्द्रित है, अर्थात् रूप में इसमें ग्रामीण परिदृश्य भी मौजूद है। यानि शहर की प्रगतिशीलता की अवधारणा पर आत्मकथन नये सिरे से विचार के लिए उकसाता है। लेखक का एक दलित जाति यानी चमार के घर में पैदा होना उसके लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। स्वयं लेखक के शब्दों में, "हम कहीं भी जायें, कितनी भी बड़ी कक्षा में पढ़ें, जातियाँ हमारा पीछा नहीं छोड़तीं। जहाँ भी हम जाते, वे भी बिना किसी रोक-टोक के जा पहुँचती थीं। बल्कि हमारे साथ-साथ चलती, उठती-बैठती थीं। कभी-कभी तो साँप भी केंचुली त्याग देता है, पर आदमी अपनी जाति की केंचुली नहीं छोड़ पाता। वह जीवन से मृत्यु तक उसी केंचुली के भीतर रहता है।" जाहिर है यातना की खुरदरी राहों से गुजरकर जो अनुभव अर्जित हुआ इसे एक वैचारिक अन्विति के साथ मोहनदास नैमिशराय ने आत्मकथन 'अपने-अपने पिंजरे' में पिरोया। यातना की इस यात्रा का सबसे खौफनाक पक्ष था जाति के साथ गुलामी की फसल का, जिसे सवर्ण दर्शन ने सदियों पुरानी वर्णव्यवस्था की अवधारणा के साथ ईजाद किया। बकौल मोहनदास, "पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुलाम थे। इधर माँ बच्चा जनती और उधर पैदा होने वाले बच्चे के माथे पर उसकी जात लिख दी जाती। उसे उसकी जात की पहचान से रू-ब-रू करा दिया जाता।"

यातना की सदियों पुरानी इस कहानी को इस तरह सृजित किया गया था, जिसमें गौरव या दर्प का एक भी अहसास नहीं बचे। 'अपने-अपने पिंजरे' के लेखक मोहनदास नैमिशराय को इस विरासत का तल्ख अनुभव था। लेखक ने अतीत की छानबीन की तो उसे इतिहास और संस्कृति में ही उत्पीड़न के रहस्य साफ होते नज़र आये। बिना गुनाह के अपमान का यह निर्मम उदाहरण था, 'हम लंबे समय से अपमान सहते आये थे, पर गुनहगार न थे हम।'

हम हारे हुए लोग थे, जिन्हें आर्यों ने जीत कर हाशिये पर डाल दिया था। हमारे पास अंग्रेजों के द्वारा दिये गये तमगे, मेडल, पुरस्कार न थे। हमारे पास था सिर्फ कड़वा अतीत और ज़ख्मी अनुभव। मन शरीर पर चोट पड़ती तो वे ही ज़ख्म हरे हो जाते। सदियों से गर्दियों में रहते-रहते अपने इतिहास से कट गये थे। अपने संस्कृति भूल गये थे। हमारे हथियार भोथरे हो गये। पहले हम उजड़े फिर बिस्तियाँ, बाद में संस्कृति। इस विरासत में यौन उत्पीड़न और परिवार के बिखरने के खौफनाक मंजर भी नाभिनालबद्ध थे, 'हजारों व-नों से टूटने-बिखरने का यही क्रम चलता रहा। बस्तियों से उजड़कर मैदान, खेत, पहाड़, सड़क, फुटपाथ और न जाने कहाँ-कहाँ हम पसरे। हमने आसरा ढूँढा। पीढ़ी-दर-पीढ़ी दुःख सहने की प्रक्रिया से हम दास बनते गये। हमारी गिनती गुलामों में की जाने लगी। वे मालिक बन बैठे। वे मालिक बन बैठे। हमारी औरतें उनकी रखैल बनीं। हम अपनी औरतों से कटते गये। भारतीय सामाजिक संरचना में दलितों का वर्ग इस तरह के अभिशापों का शिकार रहा। आत्मकथन लेखक ने अपनी बस्ती के आलोक में इन यातनाओं को बखूबी महसूस किया। दलित उत्पीड़न के वे अनुभव जो विद्यार्थी जीवन, कार्यक्षेत्र एवं एकटीविस्त जीवन के दौरान जाने अनजाने अर्जित हुए, उन्हें आत्मकथन लेखक ने सिलसिलेवार एवं योजनाबद्ध ढंग से 'अपने-अपने पिंजरे' में पिरोया है।

20.2.2 असहमति और विद्रोह का समाज दर्शन

ब्राह्मण संस्कृति का मूल आधार जाति प्रथा है, जिसका विस्तार सामाजिक-आर्थिक संरचना में आसानी से दिखायी पड़ता है। आधिपत्य की इस संस्कृति का परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मण संस्कृति मजबूत होती चली गई और भारत के मूल निवासियों (दलित-पिछड़ा वर्ग) यानी श्रमण संस्कृति हाशिए पर चली गयी। लेकिन यह संस्कृति कभी न-ट नहीं हुई। संवेदनशील विचारकों ने अपने दार्शनिक विन्यासों में ब्राह्मणवादी संस्कृति की असलियत को बेनकाब किया। असहमति और विद्रोह से अर्जित इस समाज दर्शन की विभिन्न फलश्रुतियों का प्रभाव मोहनदास नैमिशराय की चिंतनशैली पर पड़ा। इसके साथ ही उनके जीवन के व्यावहारिक अनुभवों ने इसके लिए प्रखर रूप से प्रेरित किया। 'अपने-अपने पिंजरे' का नायक विद्यार्थी जीवन से पत्रकार जीवन तक पारंपरिक जातिवादी व्यवस्था से असहमति व्यक्त करता है। असहमति और विद्रोह के दो वाक्य को प्रसंगवश उद्धृत किया जा सकता है। आत्मकथन के पहले भाग में एक घटना का वर्णन है। मोहनदास नैमिशराय के घर के पास बने मंदिर में जब दलित बस्ती के लड़के जाते थे तब अक्सर उनके कानों में इस तरह की हिकारत भरी वाणी पहुँचती, 'सब भरस्ट करके रख दिया है इन्होंने।' एक दिन पुजारी ने झल्लाकर प्रसाद की चाहत रखने वाले मोहनदास से कहा, 'तू चमार का है ना।' सब कुछ भ्रष्ट कर दिया। कितनी बार कहा तुम ढोरों से, प्रसाद दूर से लिया करो।' इस दुर्व्यवहार से क्षुब्ध मोहनदास में विद्रोह की चिनगारी फूटी। बकौल मोहनदास, 'मंदिर के कोने-कोने से जैसे हमारे लिए गालियाँ आ रही थीं। हम भी क्या करते। हमारा तो कोई मंदिर न था। सारे मंदिर सवर्णों के थे। वे ही पुजारी थे और वे ही चौकीदार। मेरे भीतर ज्वालामुखी उग आया था जिसने मुझे झिझोड़कर रख दिया था। मैंने आवेश में वहीं प्रसाद पुजारी के सामने थूक दिया था।

'थू, तुम्हारा मंदिर और तुम्हारा प्रसाद...।'

घटना ने जिस विद्रोह के समाज दर्शन को जन्म दिया, उसमें रूढ़ियों ने नकार का विवेक सक्रिय था। लेखक की स्वीकारोक्ति है, 'उस दिन के बाद मैं मंदिर नहीं गया था। मंदिर मुझसे मीलों दूर हो गया था, जैसे मंदिर के भीतर रखे पत्थर के देवताओं के प्रति नफरत-सी हो गयी थी। शायद यहीं से मेरे भीतर कोई नास्तिक पुरु-न आकर बैठ गया था। बाद में नफरत और अनास्था और बढ़ी। जैसे कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाकर उन्हें आग पर

सँककर मजबूत बनाता है वैसे ही मंदिर के प्रति मेरे मन में रची-बसी ग्रंथियाँ समय की आँच में और मजबूत हुई थीं।’

विचार की इसी शुरुआती पीठिका पर भवि-य की अनेक घटनाओं ने रूपाकार ग्रहण किया। लेखक का मानना है, विद्रोह के समाज दर्शन के निर्मित हुए बिना जीवन की सार्थक परिणति संभव नहीं। आत्मकथन के दूसरे खंड में एक घटना का वर्णन है। मेरठ के निगार टॉकीज में जी.पी. सिप्पी कृत फिल्म ‘अहसास’ में चमार जाति पर अभद्र टिप्पणी के खिलाफ नैमिशराय जी के नेतृत्व में एक दल बना जिसने जिलाधीश को फिल्म प्रदर्शित न करने की गुजारिश के साथ ज्ञापन दिया। बावजूद इसके फिल्म प्रदर्शन पर रोक नहीं लगी। फिर क्या था, दलित युवकों ने तय किया सर्वर्णवादी प्रशासन को जगाया जाय। उग्र प्रदर्शन हुआ, अंततः फिल्म प्रदर्शन पर रोक लगी।

आत्मकथन के विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से असहमति और विद्रोह के समाज दर्शन के कारणों की छानबीन की गयी है और उसकी फलश्रुतियों का मूल्यांकन भी किया गया है। कहना न होगा लोकतांत्रिक समझ के लिए ऐसे वितान आधारभूत प्रेरणा का काम करते हैं।

20.2.3 यथार्थ का बेबाक विश्लेषण

दलित आत्मकथनों की एक आधारभूत विशेषता यह भी है कि उनमें जीवन के खुरदरे यथार्थ और पीड़ा की अनुभूति को यथार्थपरक ढंग से विश्लेषित किया जाता है। यथार्थ के इस बेबाक विश्लेषण में न सिर्फ पारंपरिक सत्ता प्रतिष्ठानों से उत्कट संघर्ष का चित्रण होता है अपितु वर्णवादी समाज के बीच संघर्षरत दलित दृष्टि या अस्मिता की प्रक्रिया का भी वर्णन होता है। इस दृष्टि से ‘अपने-अपने पिंजरे’ एक उल्लेखनीय कृति है। आत्मकथन में रोजमर्रा के जीवन-यापन में बुनियादी जरूरतों, शैक्षिक व्यवस्था में दलितों के प्रति अपनानी जाने वाली घृणादृष्टि, रोजगार के मोर्चे पर आरक्षण के प्रति सर्वर्णवादी आग्रहों, पारंपरिक दलित व्यवसायों के प्रति तथाकथित उच्च जाति की मानसिकता, सर्वर्णवादी आग्रहों से प्रेरित संचालित शासन-व्यवस्था, दलित राजनीति, अवसरवाद, पारिवारिक मोर्चे पर आदर्श के कारण आने वाली भौतिक दिक्कत इत्यादि के चित्रण में यथार्थदृष्टि का परिचय दिया गया है। मुख्यधारा की आत्मकथनों से यह चित्रण इस अर्थ में उल्लेखनीय है कि इसमें खुद को भव्य या दिव्य तरीके से पेश करने का अहंकार सक्रिय नहीं है।

20.2.4 दृष्टि की व्यापकता का वितान

प्रायः दलित आत्मकथनों पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनकी दृष्टि का विस्तार महज उत्पीड़न और उसी से उपजी प्रतिक्रिया तक सीमित है। ‘अपने-अपने पिंजरे’ का लेखक उत्पीड़न और उससे उपजी प्रतिक्रिया से आगे जाकर उन कारणों की छानबीन भी करता है, जिनके चलते एक वर्णवादी अमानवीय समाज का जन्म होता है। आत्मकथन में समाज एवं देश के संदर्भ में दलितों की सकारात्मक भूमिका को रचनात्मक मुखरता के साथ रेखांकित किया गया है। साथ ही उन कारणों की छानबीन भी की गई है, जिनके चलते दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार की रूढ़ियाँ बनीं। आत्मकथन लेखक को इस बात का गर्व है कि वे उस समुदाय से संबद्ध नहीं हैं, जिसने शो-नण किया, निर्दो-नों को सताया और धर्म के नाम पर अमानवीय व्यवस्था की तरफदारी की। बकौल लेखक, ‘हम गरीब ज़रूर थे पर हमने न देश बेचा न अपना जमीर।’ न हम डंडीमार थे और न ही सूदखोर। चोर लुटेरों की श्रेणी में हम नहीं आते थे। हमारे पुरखों ने घर बनाये, शहर बनाये पर न हमारे पास ढंग के घर थे और न बस्तियाँ। शहरों के भीतर बसने की कल्पना भी

करना हमारे लिए मुश्किल थी। शहर-दर-शहर और उनके आसपास छिदरे हमारी जात के लोगों की यही दास्तान थी।...शहर के नाले/कूड़ाघरों/नदियों के कछारों/कब्रिस्तान के आस-पास हम जहाँ-तहाँ पसरते रहे। पर सवर्णों की तरह हमने न मुगलों से समझौता किया न अंग्रेजों से सौदेबाजी की और न शहर में बख्सीस में हवेलियाँ/कटरे/मंदिरों के नाम बड़े-बड़े भूखंड स्वीकार किये। समूचे शहर में उनके बड़े-बड़े भवन, पक्के मकान और हाशिये पर हमारे घर। किसने ऐसी संरचना की होगी, आखिर शहर को कौन बाँट गया, शहर की बस्तियों/गलियों/मोहल्लों/कटरों को जातियों के खानों में। हमारे माथे पर हमारी जातियों के नाम भी खुदते गये। ज़रख-दर-ज़रख जिनकी टीस हम झेलते रहे। सवाल हमारे लिए सलीब बने, उत्तर कहीं से न मिले।

ज़ाहिर है परंपरा की गहरी छानबीन की ऐसी सोच आत्मकथन के चित्रणों को तात्कालिक विश्लेषण की बजाए दलित परिदृश्य के गंभीर मंथन के लिए प्रेरणा देती है। रचनाकार इतिहास यात्रा को समाजशास्त्रीय सरोकारों के आईने में परखने की कोशिश करता है।

आत्मकथन में वर्णवादी सामाजिक संरचना की विरासत, सांमती-साम्राज्यवादी व्यवस्था द्वारा इस संरचना के इस्तेमाल की रणनीतियों का खुलासा, पूँजीवादी दु-चक्रों द्वारा घृणा के समाजशास्त्र को जारी रखने की चालों, आवारा पूँजी, के हृदयहीन मंसूबों द्वारा हाशिये के वर्णहीन समाज को शिकार बनाने की दुरभिसंधियों को विश्लेषित किया गया है। गाँव से शहर तक कोई ऐसा सिरा नहीं बचा है, जहाँ दलित उत्पीड़न का रूप उपस्थित न हो। आत्मकथन की व्यापकता के वितान में उल्लिखित संदर्भों को शामिल करना रचनाकार की व्यापक दृष्टि का परिणाम है।

आत्मकथन में उत्पीड़न की विरासत को गहरायी से समझने की दृष्टि रचनात्मक सरोकारों की दिशा स्पष्ट करती है। दलित जीवन की त्रासदियों को पूर्वजन्म, कर्मफल, अगला जन्म जैसी तथाकथित धार्मिक मिथकीय कल्पनाओं से यथास्थितिवादी स्वरूप प्रदान करने की कोशिश होती है। लेखक अपने जीवनगत अनुभवों (जिनमें बचपन की पीड़ा, शिक्षा व्यवस्था में मौजूद, वर्णवादी दृष्टिकोण, सामाजिक जीवन में अवर्णों के प्रति घृणादृष्टि, श्रम और पूँजी के मोर्चे पर जारी वर्णभेद, दलित अवसरवाद, दलित राजनीति की जटिलताओं इत्यादि जैसे विविध दृश्य खंड शामिल हैं। के माध्यम से उत्पीड़न की विरासत को समग्र रूप से विन्यस्त करता है।

20.3 मRi hMε dh fojkl r cjkLrs ^vi u:-vi us fi at j\$

20.3.1 वर्णव्यवस्था और पितृसत्तात्मकता

श्रम आधारित बहुसंख्यक अवर्ण आबादी को शोणित करने वाली ब्राह्मणवादी संस्कृति ने अपनी केन्द्रीयता सतत् बनाये रखने के लिए वर्ण-व्यवस्था और पितृसत्तात्मकता की अवधारणा को स्थापित किया। मोहनदास नैमिशराय ने जीवन अनुभव के दौरान इसे अच्छी तरह देखा-परखा। ब्राह्मणवादी संस्कृति के अलमदार सवर्ण दलितों और उनकी महिलाओं को अपनी मिल्कियत समझते थे। व्यवस्था की उपलब्धियों से पहले अवर्णों की वंचित किया गया, फिर उनकी लाचार रहन-सहन पर फिकरे किसने की परंपरा भी शुरू हुई। दलित चौतरफा प्रहारों के शिकार हुए। इस्लाम के कट्टरवादी रूप ने उन्हें हिन्दू कहकर धिक्कारा दूसरी तरफ वर्णवादी हिन्दुत्व ने उन्हें सदैव उपहास और घृणा का पात्र बनाया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था औरत को हमेशा कमतर मानती है। अगर औरत दलित हो तो उत्पीड़न और भी बेखौफ। कई कड़वे अनुभवों के बाद लेखक ने नोट किया, “लोग बाल की खाल खींचते हैं। मरे हुए जानवरों का माँस खींचते। वे कहते थे कि हम मुर्दा जानवरों

की खाल खींचते हैं। मर हुए जानवरों का माँस खाते हैं, शराब पीते हैं। जुआ खेलते हैं। गंदी-गंदी गालियाँ देते हैं। अपनी औरतों को पीटते हैं। हमारी औरतें जंगल जाती हैं। एक टोकरी गोबर पर बिक जाती है। उनके पाँव दबाती हैं। उनका विस्तर बनती हैं। दंगे भड़कने पर मुसलमान हमें हिन्दू समझकर मारते हैं और जब जब कर्फ्यू नहीं होता तो हिन्दू चमार समझकर अपमानित करते हैं। हमारी माँ-बहनों के जिस्म को झिंझोड़ना अपना अधिकार समझते हैं। पर हमारे कोई अधिकार नहीं थे।"

वर्ण-व्यवस्था से ही जुड़ी है अस्पृश्यता की अवधारणा। अस्पृश्यता ने दलितों को सभी प्रकार के मानवीय और प्राकृतिक अधिकारों से वंचित किया। इस शो-ण को वैधता प्रदान करने के लिए 'मनुस्मृति' जैसे ग्रंथों में ऐसी संहिताओं की रचना की गयी, जिनसे सवर्णों को शूद्रों से उत्पादक वर्ग होने के बावजूद सेवा कराने के कार्य का अधिकार दिया गया। लेखक लिखते हैं, "हमारी जात के मर्द-औरतों को चौबीस घंटे उनकी सेवा करने को तत्पर रहना पड़ता था। दिन का कोई समय हो, रात कितनी भी गहरी हो गयी हो। सवर्णों का मूलतंत्र भी तो यही था। दलितों की पुरानी पीढ़ी के साथ नयी पीढ़ी को गुलाम बनाकर रखना। हमारा काम था सेवा करना। हम सेवादार थे और वे हमारे मालिक। उनके हाथ में हंटर होते, चाकू होते, लाठी-बल्लम होते। वे इनके साथ धर्म, भाग्य और भगवान का हथियार भी इस्तेमाल करते। यही तो हमारा भाग्य है। ऐसा हमें बार-बार याद दिलाया जाता।"

वर्णव्यवस्था अपनी नींव पुख्ता रखने और वर्चस्व बनाये रखने के लिए धर्म, भाग्यवाद, पुनर्जन्म, कर्मफल जैसे सिद्धान्तों का सहारा लेती रही। आत्मकथन लेखक ने इन सबका यथा प्रसंग विश्लेषण किया है।

20.3.1 व्यक्ति अस्मिता बनाम जाति व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था और जाति व्यवस्था के सोपानीकृत श्रेणी विभाजन के कारण व्यक्ति की प्रतिभा दायम हो जाती और उसकी जात प्रधान। व्यक्ति योग्यता और प्रतिभा को नकारने के अनेक पहलुओं का चित्रण आत्मकथन में मौजूद है। जाति व्यवस्था का आतंक और दर्प इस तरह सक्रिय है कि व्यक्ति की जात जानने के बाद ही यह तय होता है कि उससे संवाद हो रहा है, वह अवर्ण है तो बातचीत बंद कर दी जाती है। मेले में जा रहे लेखक के परिवार को बार-बार इस कड़वे सच का सामना करना पड़ा। मामा की बारात में जाते हुए नाना ने लेखक को यह समझाया, 'रास्ते में कोई भी जात बतलाओ, पर अपनी जात बिल्कुल नहीं। हमारी जात का तो नाम सुनकर लोग आग बबूला हो जाते थे।' उसी तरह दीदी के घर जाते समय प्यासे लेखक से पहले जात पूछी जाती है, फिर कहा जाता है, 'म्हारे घर चमारों की खत्तर पानी ना है।' जाति व्यवस्था की संरचना व्यक्ति अस्मिता को इस तरह धकेलती है कि लेखक को जोहड़ का गंदा, बदबूदार पानी पीकर प्यास बुझानी पड़ी। व्यक्तित्व गढ़ने के केन्द्रीय संस्थानों अर्थात् विद्यालयों का परिवेश भी ऐसा ही है, जहाँ लगातार व्यक्ति अस्मिता को ध्वस्त और जाति व्यवस्था को प्रतिष्ठित करने का माहौल सक्रिय है।

लेखक की टिप्पणी गौरतलब है, "अध्यापक हमारे नाम लेकर कम बुलाते थे, बात-बात में चमार दरवज्जे वाले, कह संबोधन किया करते थे। धीरे-धीरे सभी लड़कों को पता चल गया था कि हम जात से चमार हैं, क्योंकि हम चमार नाम की बस्ती में रहते थे।....कई बार मन किया जो-जो अध्यापक हमें बस्ती का नाम लेकर पुकारते हैं उनकी शिकायत करनी चाहिए, लेकिन हममें से कोई भी किसी की भी शिकायत न कर सका था। कोई भी नया अध्यापक आता वह हमारा नाम बाद में पूछता। पहले हमारे बाप का नाम पूछता। हम कहाँ रहते हैं, हमारा बाप क्या काम करता है आदि-आदि। बस इस तरह धीरे-धीरे वे सब बात

पूछ लिया करते थे। अपने आप पता लग जाता था कि हमारे जिस्म के भीतर कहाँ-कहाँ घाव हैं। फिर वे उन घावों को छेड़ते। आत्मकथन प्रभावी ढंग से व्यक्ति अस्मिता का सर्वर्ण मानसिकता द्वारा रौंदे जाने की अनेक प्रक्रियाओं एवं प्रसंगों का विवेचन करता है।”

20.3.2 वर्णवादी समाज और बहिःकृत बस्तियाँ

‘अपने-अपने पिंजरे’ आत्मकथन में भारतीय गाँव और शहरों की बस्तियों में सक्रिय वर्णवाद को चित्रित किया गया है। जात के अनुसार बस्ती और उसी के मुताबिक ही नागरिक सुविधाओं की उपलब्धता होती है। लेखक ने इस परिदृश्यों का सटीक विश्लेषण किया है। ब्राह्मणवादी संस्कृति की इस फलश्रुति को न मुगलों ने छेड़ा और न ही अंग्रेजों ने। मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं- ‘मेरठ में मराठे आये और मुगल भी। फिरंगी अपनी भा-ना तथा संस्कृति का समूचा लश्कर लेकर आये। जाति और वर्णों के खाने में पहले से ही बस्तियाँ बँटी थीं। हर आने वाले हमलावर दस्ते ने उन्हें अलग-अलग नाम दिये। बस्तियों के चप्पे-चप्पे पर जातिगत नामों की छाप थी। कुछ बस्तियाँ बाड़ों और पाड़ों के नाम से जानी गयीं-जत्तीवाड़ा, पौड़ीवाड़ा, जटवाड़ा, छीपीवाड़ा, खटीकवाड़ा, ठटेरवाड़ा, बनियावाड़ा, आदि-आदि। गलियों पर भी कहीं-कहीं वैसी ही छाप रही। नील की गली, पत्ते वाली गली रोहतगी गली, सुनार गली, कसाइयों वाली गली। मेरे शहर के भीतर बने पुल तथा पुलियों पर भी जातियों की पहचान थी। लोद्धों वाला पुल, सैनी पुल, कसाइयों की पुलिया, धीवरों की फूल...। इससे अलग बेगम पुल, भूमिया का पुल, तथा खूनी पुल भी था। शहर में गेट और दरवाजे भी थे। चमार गेट, दिल्ली गेट, शोहराब गेट, बुढ़ाना गेट और सहाय भी, जैसे बनी सराय।

हर जाति और वर्ग के लोग अपनी-अपनी पहचान में सिमटे हुए। शहर धड़कता था, पर अलग-अलग स्तर में। बस्तियाँ थिरकती-नाचती थीं अलग-अलग बोलियों में। उन सबसे मिलकर बना था यह शहर। कहना न होगा अलग-अलग बस्तियों में व्यवस्थागत बसावट की यह प्रक्रिया जाति विभक्त भारतीय समाज की बुनियादी विशेषता है जिसे आत्मकथन बखूबी प्रकट करता है।

20.4 पूँजीवाद दुःचक्र में जातिवादी संरचना का इस्तेमाल

पूँजीवाद ने वर्ण-जाति आधारित भारतीय समाज का अपने हक में पूरी तरह इस्तेमाल किया। पूँजीवाद ने दलित जीवन को बद से बदतर बना दिया। पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम से ज्यादा हैसियत पूँजी की होती है। श्रम करने वाले दलित हैं, जबकि पूँजी के स्वामी पूँजीपति हैं। पूँजी श्रमिकों के शो-नण के लिए तरह-तरह के दुःचक्रों का प्रयोग करती है। दलित श्रमिकों के काम में मीन-मेख निकालकर बाजारवादी व्यवस्था अपने ढंग से शो-नण को अमली जामा पहनाती है। ‘अपने-अपने पिंजरे’ में इस शो-नण का मार्मिक वर्णन किया गया है। लेखक ने नोट किया, ‘दुकानदारों में हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। वे टोकरे में से चप्पल निकाल-निकालकर देखते। उनमें ढूँढ़कर नुक्स निकालते। ऐसे समय पर हमें बहुत बुरा लगता। इतनी मेहनत से बा चप्पल बनाता था। फिर भी वे उसमें कोई न कोई कमी निकाल देते थे। असल में कमियाँ निकालकर वे दाम कम कर देते थे। एक बार घर से टोकरा भरकर माल ले गए थे तो उसे वापस न लाते थे। भले ही कम पैसे मिले। जैसे तैसे भाव पर माल बेच दिया जाता था।’

दलित श्रमिकों/दस्तकारों से खरीदी गयी सैंडिलों/चप्पलों को दुकानदार पाँच गुनी ज्यादा कीमत पर बेचते थे। श्रमिकों/दस्तकारों को ज्यादातर नकद की जगह पर्ची थमा दी जाती। इन्हीं पर्चियों से वे चमड़ा या अन्य कच्चा-माल खरीदते। पर्ची पर सामान देते समय भी

उनका शो-गण होता। इस तरह वे दोहरे शो-गण का शिकार होते। अनवरत शो-गण के कारण अभावग्रस्त हो जाते। अभाव का आलम यह था कि जो चप्पल बनाते उन्हें ही चप्पल नसीब नहीं होती। आत्मकथन लेखक कहते हैं, 'बस्ती के घर-घर में चप्पलें बनती थीं' लेकिन पाँव में बरसों तक ढंग की कोई चप्पल नहीं आयी। बहुत सारे राज्यों में दलितों को चप्पलें पहनने पर जातिव्यवस्था ने रोक लगा रखी थी। आज भी दक्षिण के राज्यों में दलितों को सवर्णों की बस्तियों से गुजरने से पहले जूते-चप्पले हाथ में उठाकर चलने के निर्देश हैं। इस नियम को दलितों/अछूतों पर लागू करने में कथित सवर्ण वर्ग जरा भी कोताही नहीं बरतते, उसी तरह दलित स्वयं भी इसका पालन करते चलते हैं। उन्हें यह डर लगा रहता है कि नियमों के टूटते ही उन पर सवर्ण वर्गों का कहर टूट पड़ेगा। इसी नियम की अनदेखी न करने हेतु दलित चप्पले जूते बनाम बेचते रहे हो, अपने लिए चप्पले-जूते बनाकर नहीं पहन सकते। इसी तरह मुसीबतों से घिरे मोचियों को कई बार बेगार भी खटना पड़ता था।

20.5 वर्णवादी पदानुक्रम, श्रे"ठताबोध और दलित समाज

ब्राह्मणवादी व्यवस्था तले पिसते दलितों में भी जाति प्रथा का नासूर गहरे तक जमा है। 'अपने-अपने पिंजरे' से इस विरोधाभास को ईमानदारी से विश्लेषित किया गया है। शोणित दलितों में जाति आधारित श्रे-ठता के दंभ के कारण एकता नहीं हो पाती। मोहनदास नैमिशराय ने इसके अनेक दृ-टांतों को देखा, दलितों में ही जाटव और वाल्मीकि जातियों के बीच संवाद का अभाव तो था ही, साथ ही आपस में घृणा और तनाव का वातावरण भी रहता था। कभी-कभी तो मारपीट भी हो जाती थी। हमारी जात के घरों में भी सफाई करने वाली आती थीं जिन्हें अन्य की तरह हम भी अबे ओ भंगी के अरी ओ भंगन...आदि नामों से पुकारने में, अपना बड़प्पन समझते थे। उन्हें बात-बात पर गालियाँ भी देते थे। अपमान और अवमानना के साथ अस्पृश्यता के संदर्भ भी दलित समाज के संघर्ष को कुंद करते हैं। ब्राह्मणवादी व्यवस्था की इस सोच का विस्तार दलित समाज को अपनी गिरफ्त में लिये हुए है। लेखक की निगाह इसे बखूबी महसूस करती है। दलित समाज तक ब्राह्मणवादी असमानता की सोच के एक प्रसंग पर लेखक की टिप्पणी है। 'उस समय तक हमारी जात के विवाह आदि में कोई भी वाल्मीकि समाज का व्यक्ति पंगत में हमारे साथ बैठने की हिम्मत नहीं कर सकता था और न ही हमारे बीच से ही कोई उन्हें बुलाने का साहस करता था। एक-दूसरे के प्रति घृणा तथा ई-र्या अधिक थी। वर्णवादी पदानुक्रम और श्रे-ठताबोध के दलित समाज तक विस्तार के विभिन्न पहलुओं का चित्रण करते हुए लेखक ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया है कि 'आत्ममंथन की प्रवृत्ति का अभाव दलित समाज की एकता और विकास में बाधक है।'

20.6 अपने-अपने पिंजरे : संरचनागत वैशि"ट्य

आत्मकथन लेखक ने परंपरागत आत्मकथनों से अलग 'अपने-अपने पिंजरे में' खुरदरे और बेलौस यथार्थ को रोमानी शैली की जगह यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया है। अपने जीवन को महान और दूसरे जीवन को क्षुद्र घोषित करने का यहाँ उद्देश्य नहीं है। भूमिका में विस्तार से परंपरागत आत्मकथनों से 'अपने-अपने पिंजरे' के अलगाव बिन्दुओं को रेखांकित किया गया है। जहाँ परंपरागत आत्मकथनों प्रायः जीवन के अंतिम दौर में लिखी जाती हैं, वहीं दलित आत्मकथन लेखकों ने अपने जीवन की युवावस्था में आत्मकथन लिखे। महीप सिंह की टिप्पणी गौरतलब है, 'आत्मकथन युवा लेखकों द्वारा लिखे गये हैं, जिन्होंने वृत्तों के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया है कि हम आखिर कौन हैं, जिस रूप में आज हम समाज में पहचाने जाते हैं, उसके कारण क्या हैं। ऐसे लेखक पीछे मुड़कर इसलिए देखते हैं कि सामने का रास्ता साफ और स्प-ट दिखायी दे।'

मोहनदास नैमिशराय की यह कृति इस अर्थ में आत्मकथन है। 'उन्होंने अपने जीवन की उन तल्ख और निर्मम सच्चाइयों को इसमें उकेरा है, कहना न होगा इनमें मानवीय पीड़ा अपनी पूरी सघनता से व्यक्त हुई है।' - विमल थोरात (दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर)

प्रायः दलित आत्मकथनों पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनमें 'दलित जीवन की पीड़ा के आख्यान की एकरसता है। इससे अलग 'अपने-अपने पिंजरे' में दलित जीवन के विभिन्न विरोधाभासों को भी रचना संयोजन में समाहित किया गया है। दलितों के अंतर्विरोध, मसलन अस्पृश्यता, अवसरवाद, स्त्री-उत्पीड़न, सांप्रदायिक-कट्टरता इत्यादि प्रसंगों को समाविष्ट करना आत्मकथन लेखक की विस्तृत दृष्टि का प्रमाण है।'

भा-ना और शिल्प में सौन्दर्य मानक क्या होंगे इस सवाल पर 'अपने-अपने पिंजरे' यथार्थवादी दृष्टि का पक्षधर है। यदि जीवन में कुरूपता है तो रचना कहती है कि कुरूप और भ्रष्ट के उद्घाटन में ईमानदारी से कोताही की कोई जरूरत नहीं, ताकि जनतांत्रिक समाज की दिशा में कोई पहल रूपाकार ग्रहण कर सके।

20.7 सारांश

आपने इस इकाई में दलित जीवन को मोहनदास नैमिशराय के व्यक्तित्व विकास और गठन के आलोक में समझा। आत्मकथन 'अपने-अपने पिंजरे' जहाँ सदियों पुरानी तथाकथित ब्राह्मणवादी संस्कृति के सच का बयान करता है। वहीं प्रतिरोध के उन प्रखर स्वरों के बनने की प्रक्रिया को भी संवदेनशीलता से अभिव्यक्त करता है जिसे दलित दृष्टि ने संभव किया। अंतर्वस्तु और रूप से जुड़े विभिन्न पहलुओं से भी आप परिचित हुए।

20.8 dN उपयोगी पुस्तके

d% vkèkkj xfk

i) nfyR vkRedFku & ejkBh l s vufnr

'अछूत', (1978), दया पवार, अनुवाद - दामोदर खडसे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. संस्करण 1980, तृतीय आवृत्ति, 1996, पुनः 2001।

'अक्करमाशी', (1984), शरण कुमार लिम्बाले, अनुवाद - डॉ सूर्य नारायण रणसुभे, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1991, द्वितीय संस्करण, 1997।

'उचक्का', (1987), लक्ष्मण गायकवाड़, अनुवाद - डॉ सूर्य नारायण रणसुभे, प्रथम संस्करण 1992, पेपरबैक संस्करण, 2001, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

'छोरा कोल्हाटी का', (1994), किशोर शांताबाई काले, अनुवाद - अरुंधती देवस्थले, प्रथम संस्करण 1997, पेपरबैक संस्करण, 1999, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

'जीवन हमारा', (1986), बेबी कांबले, अनुवाद - ललिता अस्थाना, प्रथम संस्करण 1996, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।

'तराल-अंतराल', (1976), शंकरराव खरात, अनुवाद - केशव प्रथमवीर, प्रथम संस्करण 1987, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

'नाज़ा', (1990), ('माज्या जल्माची चित्तरकथा') शांताबाई कृष्ण कांबले, दानिश बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009।

- 'पराया', (1980), लक्ष्मण माने, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993।
- 'यादों के पंछी', (1978), प्र. ई. सोनकांबले, अनुवाद डॉ. सूर्य नारायण रणसुभे, प्रथम संस्करण 1983 पेपरबैक संस्करण, 2004, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- 'डेरा डंगर', (1983), दादा साहेब मोरे, प्रथम संस्करण, 2001, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- 'अंतःस्फोट' (1981), कुमुद पावडे, आनंद प्रकाशन, औरंगाबाद, 'मेरी संस्कृति कथा', शीर्षक हिस्से का अनुवाद रवीन्द्र देवघरे, 'कथादेश' पत्रिका, अप्रैल 2005, दिल्ली।

ii) fglnh nfyv vkRedFku

- 'अपने-अपने पिंजरे', (दो भाग), मोहनदास नैमिशराय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। भाग-1 - 1995, भाग-2 - 2002।
- 'जूठन', (1997), ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- 'तिरस्कृत', (2002), सूरज पाल चौहान, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद।
- 'संतप्त', (2006), सूरज पाल चौहान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- 'झोपड़ी से राजभवन, (2002), माता प्रसाद, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली।
- 'दोहरा अभिशाप' (1999), कौशल्या बैसंत्री, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली।
- 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' (2009), श्योराज सिंह बेचैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
- 'मेरा सफर मेरी मंजिल', (2000), डी आर जाटव, समता साहित्य सदन, जयपुर।
- 'मुर्दहिया', तुलसीराम, राजकमल प्रकाशन, 2011।
- 'शिकंजे का दर्द' सुशीला टाकभोरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वारा शीघ्र प्रकाश्य।

iii) i atkch l s vupkn nfyv vkRedFku

- 'छांग्या रूख' (2002), बलबीर माधोपुरी, अनुवाद - सुभाष नीरव, प्रथम संस्करण, 2007, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

[k½ vkykpuk & xfk

- आंबेडकरी स्वकथने : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (मराठी, 2006) डॉ. अनिल सूर्या, सुगावा प्रकाश, पुणे।
- दलित पर्सनल नैरेटिव्स, (2010) राजकुमार, ओरियन्ट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।
- 'राइटिंग कास्ट/राइटिंग जेण्डर : नैरेटिंग दलित वीमेन्स टेस्टीमोनियज (2006), शर्मिला रेगे, जुबान, काली फॉर वीमेने, नयी दिल्ली।
- ट्रांसलेटिंग कास्ट (2003) सं. तपन बसु, कथा, वीमेन, नयी दिल्ली।
- जेण्डर एण्ड कास्ट (2003) सं. अनुपमा राव, काली फॉर वीमेन, नयी दिल्ली।

दलित एण्ड रेलिजन (2009) सं. डी. मुरली मनोहर अटलांटिक, नयी दिल्ली।

दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, अनामिका पब्लिशर्स, नयी दिल्ली प्रा. लि., प्रथम संस्करण (2008)।

दलितांची आत्मकथने : संकल्पना व स्वरूप (1999), डा. वासुदेव मुलाटे, स्वरूप प्रकाशन, औरंगाबाद द्वितीय, आवृत्ति 2003।

नैमिशराय मोहनदास - अपने-अपने पिंजरे, भाग-1, वाणी प्रकाशन, दरियांगंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1991।

नैमिशराय मोहनदास - अपने-अपने पिंजरे, भाग-1, वाणी प्रकाशन, दरियांगंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2000।

वाल्मीकि ओमप्रकाश - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृ-ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरी आवृत्ति, 2008।

वाल्मीकि ओमप्रकाश - मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009।

रणसुभे सूर्यनारायण - दलित साहित्य स्वरूप ओर संवेदना, अमित प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2009।

चन्द्र सुभा-न- दलित आत्मकथनों - अनुभव से चिंतन, साहित्य उपक्रम, प्रथम संस्करण, 2006।

तेलुगु साहित्य में दलित दस्तक - सं. रमणिका गुप्ता/डॉ. वी. कृणा।

बहु - जुलाई - रमणिका गुप्ता।

दलित चेतना: सोच - सं रमणिका गुप्ता।

दलित साहित्य: सृजन के संदरं - डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी।

दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र - डॉ. शरणकुमार लिंबाले।

भारतीय दलित साहित्य एक परिचय - डा. तेजस्वी कट्टीमनी।

x½ i f=dkvka ds fo'k'skkad

'अपेक्षा' दलित आत्मवृत्त विशेषांक, सं. डॉ. तेजसिंह, दिल्ली, अंक - जुलाई - सितंबर, 2003।

'अन्यथा' दलित-अश्वेत महिलाओं की संघर्ष कथा पर केन्द्रित अंक, सं. कृष्ण किशोर, लुधियाना, अंक-जून 2008।

'दलित अस्मिता' अंक - अप्रैल - जून, 2011।

20.9 प्रश्न/अभ्यास

- 1) 'अपने-अपने पिंजरे' के सरोकारों को स्प-ट कीजिए।
- 2) 'अपने-अपने पिंजरे' दलित यातना के साथ दलित अंतर्विरोध का भी दस्तावेज है, क्या आप इससे सहमत हैं?
- 3) सामंती और पूँजी केन्द्रित व्यवस्था भारतीय वर्ण व्यवस्था का इस्तेमाल अपने हक में कैसे करती हैं, 'अपने-अपने पिंजरे' के आलोक में समझाइए।
- 4) 'अपने-अपने पिंजरे' के संरचनागत वैशि-ट्य का उद्घाटन कीजिए।
- 5) दलित आत्मकथनों की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं? सोदाहरण समझाइए।
- 6) दलित आत्मकथन दलित जीवन के दस्तावेज़ हैं। विवेचना कीजिए।
- 7) सामाजिक जीवन के कौन से रूप दलित आत्मकथनों में दर्ज़ हुए हैं?
- 8) दलित आत्मकथनों में व्यक्त धार्मिक विश्वासों की समीक्षा कीजिए।
- 9) तमाम रुकावटों के बावजूद दलित समुदाय शिक्षा जगत में दाखिल हुआ। पठित आत्मकथनों के आधार पर उत्तर दीजिए।
- 10) डॉ. आंबेडकर का दलित समाज पर क्या असर पड़ा? दलित आत्मकथनों की रोशनी में इसकी व्याख्या कीजिए।
- 11) राजनीतिक आज़ादी की तुलना में सामाजिक स्वतंत्रता को दलित आत्मकथनों में प्राथमिकता दी गई है। तर्कयुक्त उत्तर दीजिए।
- 12) राष्ट्र की प्रचलित अवधारणा से भिन्न राष्ट्र की परिकल्पना दलित आत्मकथनों में विन्यस्त है, ससंदर्भ व्याख्या कीजिए।
- 13) दलित स्त्री आत्मकथनों की विशेषताएँ निरूपित कीजिए।
- 14) दलित आत्मकथनों ने साहित्य की पारंपरिक समझ को बदलने का काम किया है। व्याख्या कीजिए।
- 15) 'जूठन' दलित विवेक के रूपाकार ग्रहण करने का जीवंत दस्तावेज है। कैसे?
- 16) हिन्दी साहित्य में आत्मकथन की परंपरा का विवेचन कीजिए।
- 17) हिंदी दलित आत्मकथन की पृष्ठभूमि का परिचय देते हुए जूठन का परिचय दीजिए।
- 18) हिंदी के प्रमुख दलित आत्मकथन का विश्लेषण कीजिए।
- 19) जूठन की कथावस्तु का विवेचन कीजिए।
- 20) आत्मविश्वास के संदर्भ में जूठन के आशय को स्पष्ट कीजिए।